तारा को श्री रामजी द्वारा उपदेश और सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अंगद को युवराज पद

*** तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥ छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥2॥
भावार्थ:-तारा को व्याकुल देखकर श्री रघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा-) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु- इन पाँच तत्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है॥2॥
*** प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥ उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥3॥
भावार्थ:-वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिए रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान् के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया॥3॥
*** उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥ तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥4॥
भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! स्वामी श्री रामजी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्री रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक कर्म किया॥4॥
*** राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥ रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥5॥
भावार्थ:-तब श्री रामचंद्रजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्री रघुनाथजी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्री रघुनाथजी के चरणों में मस्तक नवाकर चले॥5॥
दोहा :
*** लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज। राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥11॥
भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया॥11॥

चौपाई :
*** उमा राम सम हत जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥ सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥1॥

भावार्थ:-हे पार्वती! जगत में श्री रामजी के समान हित करने वाला गुरु, पिता, माता, बंधु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही सब प्रीति करते हैं॥1॥

*** बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥ सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥2॥

भावार्थ:-जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गए थे और जिसकी छाती चिंता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने वानरों का राजा बना दिया। श्री रामचंद्रजी का स्वभाव अत्यंत ही कृपालु है॥2॥

*** जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥3॥

भावार्थ:-जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें? फिर श्री रामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी॥3॥

*** कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥4॥

भावार्थ:-फिर प्रभु ने कहा- हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गई। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिक रहूँगा॥4॥

*** अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥5॥

भावार्थ:-तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का हृदय में सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आए, तब श्री रामजी प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके॥5॥

वर्षा ऋतु वर्णन

दोहा :

*** प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ। राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥12॥

भावार्थ:-देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुंदर बना(सजा) रखा था। उन्होंने सोच रखा था कि कृपा की खान श्री रामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे॥12॥

चौपाई :

*** सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥1॥

भावार्थ:-सुंदर वन फूला हुआ अत्यंत सुशोभित है। मधु के लोभ से भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आए, तब से वन में सुंदर कन्द, मूल, फल और पत्तों की बहुतायत हो गई॥1॥

*** देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥2॥

भावार्थ:-मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट् श्री रामजी छोटे भाई सहित वहाँ रह गए। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे॥2॥

*** मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥ फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥3॥

भावार्थ:-जब से रमापति श्री रामजी ने वहाँ निवास किया तब से वन मंगलस्वरूप हो गया। सुंदर स्फटिक मणि की एक अत्यंत उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं॥3॥

*** कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरत नृपनीति बिबेका॥ बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥4॥

भावार्थ:-श्री राम छोटे भाई लक्ष्मणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं॥4॥

दोहा :

*** लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि। गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥13॥

भावार्थ:-(श्री रामजी कहने लगे-) हे लक्ष्मण! देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं जैसे वैराग्य में अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्त को देखकर हर्षित होते हैं॥13॥

चौपाई :

*** घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥ दामिनि दमक रह नघन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥1॥

भावार्थ:-आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती॥1॥

*** बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ। बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसें॥2॥

भावार्थ:-बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं॥2॥

*** छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु

जीवहि माया लपटानी॥3॥
भावार्थ:-छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धन से भी दुष्ट इतरा जाते हैं। (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गंदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो॥3॥
*** समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥ सरिता जल जलनिधि महुँ जोई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥4॥
भावार्थ:-जल एकत्र हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है॥4॥
दोहा :
*** हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ। जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥14॥
भावार्थ:-पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखंड मत के प्रचार से सद्ग्रंथ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥14॥

चौपाई :
*** दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥ नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥1॥
भावार्थ:-चारों दिशाओं में मेंढकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नए पत्ते आ गए हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गए हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है॥1॥
*** अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥ खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥2॥
भावार्थ:-मदार और जवासा बिना पत्ते के हो गए (उनके पत्ते झड़ गए)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है। (अर्थात् क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता)॥2॥
*** ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥ निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥3॥
भावार्थ:-अन्न से युक्त (लहराती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की संपत्ति। रात के घने अंधकार में जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो॥3॥
*** महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥ कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥4॥

भावार्थ:-भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि को निकालकर फेंक रहे हैं।) जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं॥4॥

*** देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥ ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥5॥

भावार्थ:-चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होती है, पर वहाँ घास तक नहीं उगती। जैसे हरिभक्त के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता॥5॥

*** बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥6॥

भावार्थ:-पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इंद्रियाँ (शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं)॥6॥

दोहा :

*** कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥15 क॥

भावार्थ:-कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥15 (क)॥

*** कबहु दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥15ख॥

भावार्थ:-कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अंधकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥15 (ख)॥

शरद ऋतु वर्णन

चौपाई :

*** बरषा बिगत सरद रितु आई। लछमन देखहु परम सुहाई॥फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गई और परम सुंदर शरद् ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई। मानो वर्षा ऋतु ने (कास रूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट

किया है॥1॥

*** उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा॥ सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥2॥

भावार्थ:-अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय!॥2॥

*** रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥ जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥3॥

भावार्थ:-नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गए। जैसे समय पाकर सुंदर सुकृत आ सकते हैं। (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)॥3॥

*** पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥ जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥4॥

भावार्थ:-न कीचड़ है न धूल? इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेक शून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है॥4॥

*** बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥ कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक भाव भगति जिमि मोरी॥5॥

भावार्थ:-बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानों में) शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं॥5॥

दोहा :

*** चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि। जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥16॥

भावार्थ:-(शरद् ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिए) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम वाले (नाना प्रकार के साधन रूपी) श्रमों को त्याग देते हैं॥16॥

चौपाई :

*** सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकऊ बाधा॥ फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥1॥

भावार्थ:-जो मछलियाँ अथाह जल में हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्री हरि के शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है॥1॥

*** गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥ चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥2॥

भावार्थ:-भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं तथा पक्षियों के नाना प्रकार के सुंदर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की संपत्ति देखकर दुष्ट को होता है॥2॥

*** चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥ सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥3॥

भावार्थ:-पपीहा रट लगाए है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्री शंकरजी का द्रोही सुख नहीं पाता (सुख के लिए झीखता रहता है) शरद् ऋतु के ताप को रात के समय चंद्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं॥3॥

*** देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥ मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥4॥

भावार्थ:-चकोरों के समुदाय चंद्रमा को देखकर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान् को पाकर उनके (निर्निमेष नेत्रों से) दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गए जैसे ब्राह्मण के साथ वैर करने से कुल का नाश हो जाता है॥4॥

दोहा :

*** भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ। सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥17॥

भावार्थ:-(वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गए थे, वे शरद् ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर संदेह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं॥17॥